अकबर-दिली।

अर्थात्

आत्म महत्ता।

मस्त हाफ़िज़ का बचन हैः—

कुलाहे-ताजे-सुलतानी कि बीमे-जाँ दरो दर्जस्त।
कुलाहे-दिल कशस्त अम्मा, बदर्दे-सर नमें अर्जद॥

अर्थात् बादशाह का ताज कि जिसमें हमेशा जान का भय है, दिल को लुभाने वाला होता है मगर सिर के दर्द के बराबर भी वह नहीं उतरता (कीमत नहीं की जाती)।

ख्वाज़ा हाफ़िज़ ने हमारे अकबर को नहीं देखा था, नहीं तो इस तरह का इशारा कभी न करते, जो अंगरेज कवि शेक्सपियर ने किया हैः—

"भारी वह गम से सर है कि जिस सर पै ताज है।*

क्या दोस्त, क्या दुश्मन, क्या आईन-अकबरी के शेख साहब (अबुल फजल) क्या खुफिया नवीस हज़रत मुल्ला (बदावनी), क्या पुर्तगाल के पादरी, क्या सिंघ गुजरात के जैनी, क्या अमीर क्या गरीब, क्या आलिम (विद्वान्) क्या जाहिल (मूर्ख), क्या रिन्द (दुराचारी) क्या पारसा (जितेन्द्रिय) सब के दिलों में जिसकी हुकूमत थी, जहां चाहे और जिस गोद को चाहे सरहाना बना कर बेखटके नींद में पैर पसार सकता था, ऐसा कौन था? हिन्दुस्तान का शाहंशाह अकबर।

फ्रांस के राज्यक्रान्ति के समय के बादशाह के विषय में टामस पेन ने यह करुण बचन कहा है—"हाय! यह उसका दुर्भाग्य था कि बादशाह हुआ"। बेशक जिस राजा का राज प्रजा की भूमि और शरीरों तक ही परिमित हो, उससे बढ़ कर गरीब, दया का पात्र, दिवालिया और कौन हो सकता है?

क्या अकबर के दुश्मन न थे?—थे क्यों नहीं। लेकिन महाराना प्रताप जैसे महा साहसी, वीर सच्चे धर्मात्मा क्षत्रिय का दुश्मन होना तो अकबर के गौरव को दूना करता था।

खैर हमें तो इस समय अकबर के शासन के एक दूसरे ही पहलू से प्रयोजन है।

ईश्वर स्मरण।

क्रामवेल, बाबर, महमूद, रणजीतसिंह एवं और भी हजारों बादशाहों और वीरों का नियम था कि जो युद्ध शुरू करते, सच्चे दिल से ईश्वर के दरबार में अपना सर्वस्व अर्पण कर के ईश्वर के नाम पर शुरू करते थे, और उनकी विजय भी उनकी सचाई और ईश्वर स्मरण के अनुसार थीं। बहुत खूब! लेकिन काम के आरंभ में विनती और सहायता माँगना तो कौनसी बड़ी बात है! हम सच्चा वीर उसी को मानते हैं, जिसकी हार्दिक निष्ठा और त्याग विजय के बाद जोश मारे।

जिसे देश में यादे-खुदाही रही, जिसे तैश में खौफे-खुदा न गया।

अर्थात् जिसको सुख में ईश्वर स्मरण ही रहा और क्रोध के समय ईश्वर का भय नहीं गया।

सामवेद की केनोपनिषद् में एक कथा आई है कि इन्द्रियों

के देवता एक बार बड़े मार्के की लड़ाई जीत चुके और जैसा कि अभी तक नियम चला आ रहा है भोगविलास और आमोद प्रमोद में विजय का उत्सव मनाने लगे। उपनिषदों में बड़ी ही उत्तमता के साथ दिखाया गया है कि किस प्रकार इन देवताओं को शिक्षा मिली। ऐसी शिक्षा को याद रखने वाला भारतवर्ष का एक सम्राट अकबर हुआ है। जब विजय पर विजय पाता गया और एक के बाद दूसरा सूबा उसके हाथ आता गया, यहां तक कि लगभग संपूर्ण भारतीय साम्राज्य उसके शासनाधीन होगया, जब वह राज्य की सीमा और आबादी के विचार से सम्राटचीन छोड जगत में सब से बड़ा सम्राट होगया, जब उसके सौभाग्य का नक्षत्र ठीक परम उच्चता पर पहुंचा, जब वह चढ़ते चढ़ते, उस फिसलनी घाटी तक उदय पा चुका कि जहां इधर तो नीचे खड़े हुए लोग मुँह तकते हैरान खड़े पड़े कहते हैं—"यह जायगा बढ़कर कहां रुक्ता रुक्ता।"

और उधर नेपोलियन जैसा वीर पैर फिसलते ही धर्म से भूगर्भ में गिरा, और गिरते ही चकनाचूर! ऐसी दशा में उस भूल जानेवाली घड़ी में देखिये।

"सब को जब भूल गया, इनको खुदा याद आया" सोचने लगे कि यह हाड़ और चाम का जरा सा शरीर, इस में यह शक्ति कहां से आई? किसके प्रसाद से? "दौलत गुलामें-मन शुदो-इकबाल चाकरम" अर्थात् धन मेरा सेवक और वैभव मेरा अनुचर होता जा रहा है। इस दिमाग और दिल में तेज कहां से आता है? इस मन को चलाता कौन है? इन प्राणों को हिलाता कौन है?"

क्या छिपाना है? आश्चर्य है? प्रतिदिन इस प्रकार की

विचार-धारा से उस प्रकाशस्वरूप, चिदानंदघन परमात्मा के धन्यवाद में बादशाह सलामत का यह हाल हो गया कि "दिल तेरा, जान तेरी, आशिके-शैदा तेरा"। दिन रात का धंधा हो गयाः—

नमाजो-रोजा-ओ-तसबीहो-तोबा-इस्तगफार।

अर्थात् नमाज़, रोज़ा, तशबीह (माला), तोबा (पश्चात्ताप) और इस्तगफार (क्षमा प्रार्थना)।

धार्मिक छानबीन।

अकबर के समकालीनों में इंग्लैंड के राजसिंहासन पर महारानी एलिजबथ विराजमान थीं। यह महारानी इंग्लैंड के अन्य शासकों में वैसी ही यशस्विनी है जैसे, हिन्दुस्तान के अन्य बादशाहों में अकबर। इंग्लैंड में एलिजबथ का शासनकाल या परशिया-जर्मनी में फ्रेडरिक महान् के राज्य समय को विद्या और कला की उन्नति तथा देशप्रबन्ध की उत्तमता की अपेक्षा से तो हिन्दुस्तान में अकबर के राज्यकाल से तुलना कर सकते हैं। वे दोनों छत्रधारी अपने अपने देश में सर्वप्रियता की दृष्टि से अकबर की बराबरी कर सकते हैं लेकिन धार्मिक छान बीन, ईश्वरोपासना और सब संप्रदायों के लिये एक समान रिआयत (पक्षपातरहित बर्ताव) के कारण से अकबर की कीर्त्ति अनुपम है* ! महा-

राज विक्रम और भोज के समय में भी इसी कोटि का सुख-सौभाग्य प्रजा को प्राप्त था, किन्तु वे दूर दूर की बातें हैं और बिना जांच परताल की हुई। महाराजा अशोक के समय में प्रजा को हर प्रकार का सुख प्राप्त था, विचार और धर्म की पूरी पूरी स्वतंत्रता प्राप्त थी, चीन आदि अन्य देशों के लोक भी हिन्दुस्तान में आते और लाभान्वित हो कर जाते थे, और शिकागो सन १८९३ ई० की तरह हिन्दुस्तान में सारे संसार के धर्मों का उत्सव भी धूमधाम से हुआ था, किन्तु अकबर का तो न केवल दरबार वरन् हृदय भी लगातार संसार भर के धर्मों का उत्सव-स्थान बन रहा था। किसी धर्म और संप्रदाय के लिये दरवाजा बन्द न था, विद्या, सत् और सत्यता का उपासक चाहे किसी ओर से आवें, सदैव स्वागत करता था। इस वीर पुरुष का हृदय विश्वसम्मिलन का मंदिर था और मत्थे पर किसी विरोधी धर्म या सम्मति के लिये ताला नहीं लगा था। विद्वान्, मुल्ला, शेख क़ाजी, पंडित, शाक्त, वैष्णव, जैनी, ईसाई, पादरी, और कश्मीर, दक्खिन, पूरब, सिंध, गुजरात, फारस अरब, पुर्तगाल, और फ्रांस तक के लोग अपने २ विश्वास और विचार जी खोल कर बादशाह को सुनाते हैं, क्योंकि बादशाह सलामत अत्यन्त उत्साह से सुनते हैं और उनके न्याय की सराहना करते हैं। दिन को ही नहीं रात को भी, जब लोगों के आराम का समय है, राजराजेश्वर अकबर "विद्या

के लिये दीपक के समान जलते रहना चाहिये" सूत्र का जीवन्त उदाहरण बने हुए हैं, मानवप्रेम का प्रदीप प्रकाशित कर रहे हैं।

कुछ पाठकों को दिल्लगी सी बात मालूम देगी कि शाही चबूतरे से रस्से लटकाए जाते हैं और महलों की दीवार के साथ २ एक पलंग बिचा हुआ ऊपर चढ़ता आता है, यहाँ तक कि चबूतरे के पास आ पहुँचा। रात के समय लटके हुए पलंग पर विराजमान् पंडितजी महाराज, या हजरत सूफ़िया कराम, या कोई और महाशय अपने व्याख्यान आरंभ करते हैं, और जाग्रतात्मा महाराजाधिराज ध्यानपूर्वक सुनते और प्रश्न करते हैं। कई बार रात की रात तर्क वितर्क में ही बीत जाती है। वाह री ज्ञानप्राप्ति की जिज्ञासा!

बादशाह की आज्ञा से समग्र धर्मों की पुस्तकों के फार्सी में अनुवाद होने शुरू हो गये। इंजील के अनुवाद के शुरू का मिसरा है।

"ऐ नामे-तो जीज़ज़ क्रष्टो"!

भागवत, महाभारत, विशेषतः भगवद्गीता और विष्णु पुराण, और कई उपनिषदें फार्सी गद्य और पद्य में पिरोई गई। इन अनुवादों को सुनते रहना और स्वयं अपने आचरण से उन्हें सुनाते रहना अकबर का सब से बड़ा काम था।

[विषयान्तर—संस्कृत की इन पुस्तकों के फार्सी के अनुवाद बाद में भी हुए, किन्तु साधारणतः ये अकबरवाले अनुवाद थे जिनको फ्रांस के लोग लैटिन भाषा में, जो उन दिनों समस्त योरप की विद्वत्समाज की भाषा थी, अनुवाद करके आंग्ल-देश को ले गये। इस प्रकार ये पुस्तकें पहले फ्रांस में और वहां से जर्मनी में पहुँची। वहां उनका

अत्यंत सन्मान हुआ। श्लेगल, विक्टरकज़न शापनहार, आदि योरप के तत्त्वविचारक लोगों के मनोवेग की अधिकता में हिन्दू शास्त्र की प्रशंसा इन पुस्तकों के सन्मान की साक्षी हैं। बाद में फ्रांस से हैन्री थोरो के द्वारा इन हिन्दू-पुस्तकों के लैटिन-अनुवाद अमेरिका में पहुँचे और थोरो के मित्र एमर्सन के हाथ पड़े। एमर्सन और थोरो के लेख पर वेदान्त का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है और अधिकतर एमर्सन की रचनाओं के कारण अमेरिका में वेदान्त भरा नया धर्म (नूतन मत) चल निकला है, जो बहुत शीघ्र विश्वव्यापी होने की आशा रखता है। संसार के लगभग सब से बड़े विद्या-केन्द्र हार्वर्ड युनिवर्सिटी का तत्त्ववेत्ता प्रोफेसर जमेज़ लिखता है कि सूफी मजहब आम मुसलमानी पर वेदान्त के प्रभाव का परिणाम है। लेखक इस मत से सहमत नहीं है, अलबत्ता इसमें कुछ सन्देह नहीं कि सूफी मत के फैलने में प्रायः कि वेदान्त से बहुत सहायता मिली है। और हमें इस बात के मानने में भी संकोच नहीं कि संस्कृत पुस्तकों के अकबरी अनुवाद हिन्दुस्तान और फारस आदि में सूफीमत के बढ़ाने फैलाने में मुख्य कारण हुए हैं।]

बादशाह का मुखमण्डल वसन्तपुष्प की भांति प्रफुल्ल रहता था। सुशीलता के लिये हँसी मानों ओठों से पिरोई थी। यह प्रसन्नता क्यों न होती? जहां विश्वप्रेम वा ईश्वर-भक्ति है, शोक और क्रोध की क्या शक्ति कि पास फटक सकें?

हरजा कि सुल्ताँ खेमाजद गोगा नमानद आमरा।

अर्थः—जिस स्थान पर राजाधिराज ने डेरा लगाया वहां साधारण लोगों का शोर न रहा।

यादे अल्ताफे-खुदा दर दिल निहाँ दारेम मा।
दर दिले-दोजख बेहिश्ते जाविदां दारेम मा॥

अर्थात् परमात्मा की कृपा का निरन्तर हम हृदय में स्मरण रखते हैं, और इस प्रकार नरक लोक में भी हम नित्य स्वर्ग का अनुभव करते हैं।

जिन लोगों के हृदय ऐसे उदार और जिनके भीतर प्रीति ऐसी विश्वव्यापिनी न थी, उनमें से एक मुल्ला साहब बादशाह को पर्दे के भीतर से यों ताना देते हैंः—

खंदा कर्दन रखना दर कसरे-हयात अफगंदन अस्त,
मेशवी अज हर नसीमे हमचू गुल खंदां चरा॥

अर्थात् हंसना मानो जीवनगृह में छिद्र बनाना है जैसे प्रातः काल की वायु के झकोले से खिले हुए फूल की दशा होती है।

उपदेशक महोदय! आप तो बादशाह की सर्वप्रियता और प्रसन्नमुखता को मृत्यु के आंचल की छाया के नीचे छिपाया चाहते हैं। मौत की गिदड़भबकियां उनको देते फिरो जो विश्वप्रेम से शून्यहृदय हैं, हमारे बादशाह की तो जिह्वा यों पुकार रही है "प्रसन्नमुख होकर मरना अच्छा, और शोकसंतप्त रहकर जीना बुरा।"

मरना भला है उसका जो अपने लिये जिये,
जीता है वह जो मर चुका इंसान के लिये।

तंगदिली (हृदय की संकुचित अवस्था) का उपदेश तो इस दरबार में प्रलाप मात्र हैः—

रूए के जूदे नकुशायद न दीद नीस्त।
हरफे कि नेस्त मगज दरो ना शुनीद नीस्त॥
खंदा रू बूदन बेहमज गंजे-गुहर बखशीदन अस्त।
ता तवानी बर्क बूदन अब्रे नेसानी मबाश॥

अर्थात् वह मुख जो शीघ्र न खिले वह देखने योग्य ही

नहीं है। वह अक्षर कि जिसमें कोई तात्पर्य नहीं वह न सुनने ही योग्य है। प्रसन्नमुख होना मोतियों के ख़जाने के दाने से भी अच्छा है। जब तक कि बिजली बन सकता है, तब तक वर्षा मत बन।

भिन्न धर्मावलंबियों से भी सद्व्यवहार करो। विरोधियों से भी प्रीति करो। व्यक्तिगत शत्रुता को जड़ से उखाड़ डालो, सब से प्रीति करलो, आदि कहना सहज है, किन्तु करना बहुत कठिन। पर हाँ, कठिन हो चाहे कठिनतर, सामान्यतः सदैव और विशेषतः आजकल हिन्दुस्तान में विना इस सिद्धान्त को आचरण में लाये जातीय एकता और परस्पर मित्रता कदापि उत्पन्न नहीं हो सकती। हम यह नहीं कहते कि जिस धर्म में उत्पन्न हुए उसे छोड़ो, ढिलमिलयकीन (शिथिल विश्वासी) या रकाबी मजहब (सब के साथ बैठ कर खाने वाले) बन जाओ; अलबत्ता हम यह अवश्य कहते हैं कि जिस धर्म की चार दीवारी में पैदा हुए उस चार दीवारी से पग बाहर निकालने को पातक समझना अपने आप आत्म हनन करने का पातक है। जहां पर टिकाओ अटल जमाओ, फिसल न जाओ, पर ईश्वर के लिये पग आगे ही बढ़ाओ। किसी चार दीवारी में पैदा होना और परिपालित होना तो एक आवश्यक बात है, अलबत्ता उसी चार दीवारी में बन्द रह कर उसी में मरना पाप है—कुएँ का मेंढक बने रहना पातक है। लेकिन कोई कुछ ही पढ़ा कहे औरों के धार्मिक निश्चयों का वही सम्मान और मूल्य करना चाहिये, जो अपनी चारदीवारी के सिद्धान्तों का करते हैं। लोगों के नाशमान सांसारिक कोप तो लूट कर लेने भी अंगीकार हो जाते हैं, लेकिन कैसे आश्चर्य का बात

है कि और लोग जब अपने आध्यात्मिक कोष (धार्मिक निश्चय वा सिद्धान्त) को विनय से भी उपस्थित करें तो भी घृणा ही रहती है। इस घृणा का असली कारण क्या है? न्यूनता अर्थात् जिस धर्म में उत्पन्न हुए, उसमें पूर्ण प्रवेश और पूर्ण अनुभव न होना।

आजादी-ए-मा-दर गिरै-रा-पुख्तगी मास्त,।
आवेख्ता अस्त अज रगे-खामी समरे मा।

अर्थात् हमारी स्वतंत्रता हमारी परिपक्वता के आश्रित है, क्यों कि हमारा फल कच्ची शाख से लटका हुआ है।

प्यारे पाठको! जिस धर्म में आप पले पोसे, उसके विरोधी लोगों के व्याख्यान-वक्तृताएँ सुनने की तय्यारी के लिये चित्त को कितनी कमर कसनी पड़ती है, अर्थात् कितना साहस करना पड़ता है, किन्तु वाहरे वीर अकबर! तेरा चित्त है कि सब का चित्त हो रहा है। तू मानो प्रजा के सब घरों में पैदा हुआ था, सब धर्मों की गोदी में खेला था, सब संप्रदायों के यहां पला था, न केवल इस्लाम धर्म ही वरन् हिन्दू-धर्म, जैन-मत, और ईसाई धर्म भी उसी भारी प्रभाव के साथ तेरे जन्मजात धर्म हो रहे हैं। हिंदुस्तान को "इंतिखाब-जहाँ" नाम देते हैं और तू "इंतिखाबे-हिन्दुस्तान" बन रहा है। मनुष्य को आलमे-सग़ीर (लघु जगत्) कहा करते हैं, किन्तु तू आलमे अकबर (महान् जगत्) बन रहा है। प्रीति का अन्त क्या होता है? चित्त की एकाग्रता अर्थात् मित्र का मन हमारा मन हो जाय और चित्त की एकाग्रता का अन्तिम छोर क्या है? हमअक़ीदगी (समभाविकता-सम विश्वास) अर्थात् मित्र के विश्वास और उसका ईश्वर हमारे विश्वास और ईश्वर हो जायँ। और जब यह समान

विश्वास-मैत्री हमारे एक ही प्रकट प्रीति-पात्र तक घिरी न रहे वरन् संपूर्ण ईश्वरीय सृष्टि के साथ वर्ताव में आ जाय, जब हमारा चित्त सब के साथ एक चित्त हो जाय, माता जैसे अपने एक बच्चे को देखती है उसी दृष्टि से जब हम प्रत्येक प्राणी को अपना ही देह-प्राण समझने लगें। सूर्य जैसे सब घरों का दीपक है, उसी तरह जब हमारा चित्त हमें सब हृदयों का चित्त अनुभूत होने लगे, तो पवित्र प्रेम की विभूति प्राप्त होती है। वह कौन सी करामात है जो पवित्र विश्वप्रेम के लिये असंभव है? वह कौन सा चमत्कार है जो इस सच्चे प्रेमी के लिये बच्चों का खेल नहीं बन जाता? आज अकबर के इस पवित्र विश्वव्यापी प्रेम का हम नाम रखते हैंः—

अकबर दिली।

अर्थात्

आत्म (प्रेम) महत्ता।

इस अकबर-दिली से क्या नहीं हो सकता? आईने-अकबरी में लिखा है कि जब अकबर का भीतरी प्रभाव (आत्म बल) बहुत बढ़ गया, और वह वस्तुतः यथा नाम तथा गुणः महान् चित्त वाला, उदार हृदय अर्थात् सुविशाल हृदयवाला बन गया तो उस (अकबर) की दृष्टि से रोगी अच्छे हो जाने लगे। अकबर का ध्यान करने से लोगों की अभिलाषाएँ पूर्ण होने लगीं, दूर-दूर की बातें अकबर के चित्त में प्रकाशित हो जाने लगीः—

इश्क हो रास्त करामात न हो क्या माने!
हस्बे-इरशाद ही सब बात न हो क्या माने!

अर्थात् सच्ची प्रीति होने पर चमत्कार और आज्ञानुसार सब बातें भला कैसे न हों?

यह कोई नई बात नहीं है। हज़रत मुहम्मद, ईसा, हिन्दुओं के ऋषि मुनि महात्मा किन किन के विषय में ऐसा नहीं सुना गया? अमेरिका के संयुक्त प्रदेश में आज हजारों बल्कि लाखों ऐसे लोग मौजूद हैं जिनके लिये रोगों की चिकित्सा सिवाय ईश्वर में अनन्य भाव के और किसी प्रकार से करना अत्यन्त कठोर शपथ और अतिशय अश्रद्धा (कुफर=तिमिर पूजा) से भी बुरा माना जाता है।

औषधि खाऊं न बूटी लाऊं न कोई बैद बुलाऊं।
पूरण बैद मिले अविनाशी वाही को नबज दिखाऊं॥

मौलाना जलाल रूमी ने भी कहा है—

शाद बाश ऐ अश्क अशे-सौदाय-मा।
ऐ दवाए-जुमला इल्लत हाय-मा॥
ऐ दुवाए नखवतो नामूसे-मा।
ऐ त अफलातूनो जालीनूसे-मा॥

अर्थात् ऐ मेरे पगलायन की बाह वा! ऐ मेरे समस्त रोगों की औषधि! ऐ मेरे घमण्ड और लज्जा की दवा! ऐ मेरे अफलातून! ऐ जालीनूस! तू प्रसन्न हो!

हाल में Psychology of Suggestion—वैज्ञानिक खोज ने अमेरिका के सरकारी चिकित्सालयों में विना औषधि के चिकित्सा (अध्यात्म चिकित्सा) प्रचलित कर दी है। अकबर दिली, इस्लाम वा विश्वास, यदि राई के दाने भर भी हो तो पहाड़ों को हिला सकता है। मेरे प्यारे भारत के नवयुवकों! तुम गई बीती अठारहवी शताब्दि डेविड ह्यूम आदि के भरें में आकर मूर्खता का नाम विद्या मत रक्खो।

इसलाम (विश्वास) को कम करने के स्थान पर अटल निश्चय और विश्वप्रेम बढ़ाते क्यों नहीं? यदि विद्युत् और बाष्प की शक्ति वर्णन से बाहर है, तो मानवी हृदय क्या नहीं कर सकता? प्रत्येक जाति और संप्रदाय के लिये विश्वप्रेम बढ़ाकर तो देखो। किसी एक जाति, संप्रदाय और देश विशेष का विचार न करके प्रत्येक प्राणी के साथ वह मानव-प्रेम जो सच्चा मनुष्य बनाता है, इतना आवेशपूर्ण उत्पन्न करो कि जितना परिवार के दो एक व्यक्तियों में खर्च कर रहे हो, फिर देखो यही संसारस्वर्ग के नंदनवन को मात करता है कि नहीं। क्या तुमने मन को शत्रुता से बिलकुल पवित्र और वैर से शीशे के समान साफ़ करने का कभी अनुभव किया था?

वफा कुनेमो-मलामत कशेमो-खुश बाशेम,
कि दर तरीकते-मा काफरी सत रंजीदन।

अर्थात् मलामत को उठाकर भी वफा करना व खुश रहना। यही बस कुफर है रञ्जीदा होना मेरे मज़हब में।

अगर यह परीक्षा अभी तक नहीं की तो तुम इसके फलों को रद करने के भी अधिकारी नहीं। योगदर्शन में लिखा है:-

"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।"

अर्थात् जब हम में विश्वप्रेम (अहिंसा) दृढ़रूप से स्थिर होजाय, तो आसपास के जंगली हिंसक विषधर आदि जीवों में भी शत्रुता नहीं रह सकती। अगर कर्म और फल action and reaction कार्य कारण की समानता का सिद्धान्त ठीक है तो ऐसा क्यों न होगा?

ज्ञान के रूप में अज्ञान या प्रत्यक्षदर्शिनी बुद्धि की आध्यात्मिक अपचता के सार्वकालिक (chronic) हो जाने से संशय का

कठिन क्षयरोग पैदा होता है। यही तिमिरपूजा (अश्रद्धा) वा नास्तिकता है। इसलाम (श्रद्धा-विश्वास) और आध्यात्मिक जीवन को चुपके चुपके आस्तीन के सांप की तरह खा जाता है। पहलू में शक रखते हो? इसके स्थान पर बंदूक की गोली क्यों नहीं मार लेते? जिन्हें सर्व साधारण करामात या चमत्कार (अलौकिक चरित्र) कहते हैं, क्या उनके लिये विश्वास और चित्त की महत्ता की आवश्यकता है? कदापि नहीं। विश्वास और चित्त की महत्ता तो व्यक्तिगत आनन्द है। जब कभी आप अपने बड़े अफसर की कोठी पर हाकिम से मिलने जाते हैं तो क्या आप हाकिम के उस कुत्ते के लिये जाते हैं जो कोठी के द्वार पर दुम हिलाता हुआ आकर आपके पैर सूंघता है?

खर्के-आदत के वकार आयद दिले-अफसुर्दा रा,
गर खद बर आब नतवाँ मोतकिदशुद मुर्दा रा।

अर्थात् अगर मुर्दा निश्चयात्मा बन कर पानी पर न चल पड़े तो मुर्दा चित्त के काम में करामात कब आ सकती है?

दर्बारियों के इम्तिहान के लिये एक बार अकबर ने एक लकीर खींची और कहा कि इसे छोटा कर दो। कोई नीचे से कोई ऊपर से कोई बीच से लकीर को काटने लगा। अकबर बोला—"यों नहीं, यों नहीं, बगैर काटने के कम कर दो।" बीरबल ने उससे बड़ी लकीर पास में खींचकर कहा—"यह लो तुम्हारी लकीर छोटी हो गई।" वाह! इसी तरह यदि तुम्हें किसी धर्म या संप्रदाय में ईर्ष्या है तो उस लकीर को काटते मत फिरो। धार्मिक उपद्रव ठीक नहीं। यह युक्ति यथार्थ नहीं। तुम अपने हृदय को उनके हृदय से विशालतर बना दो। अपनी प्रेमभक्ति को उनके प्रेम से बढ़ा दो। अपनी

मानव प्रीति को उनकी प्रीति से विस्तीर्णतर कर दो, अपने साहस को उच्चतर कर दो। सत्यस्वरूप (परमेश्वर) पर अपने विश्वास को बड़े से बड़ा (अर्थात् अकबर) बना दो। संसार की बाह्यमूलक, नामरूपों की चमक दमक, इस दृश्यमान् जगत की विचित्रता, असंख्य स्वरूपों का बहुरंगीपन, किसी की आंखों को भले ही अंधा कर दे, तत्त्वज्ञानी और प्रोफेसर (आचार्य) इस मृगतृष्णा में पड़े डूबे, हाकिम और अमीर इस मकड़ी के जाल में पड़े फँसे, पंडित और विद्वान् इन लहरों में पड़े गिरें, युवक और वृद्ध इस स्वप्न में पड़े मरें, लेकिन तुमको उस सत्यस्वरूप को कदापि न भूलना चाहिये। तुमको अपनी आंख सत्यात्मा से न उठाना ही उचित है। ए विश्वासी पुरुषो! ए सम्यग् दर्शियो! फिर देखो कि आनन्द किसकी डाह करता है और कैसे शत्रु है।

कुमरियाँ आशिक हैं तेरी सर्व[१] बंदा है तेरा,
बुलबुलें तुझ पर फिदा[२] हैं गुल तेरा दीवाना है।
* * * *
किला दुःखों का सर किया ढाया,
राज अफलाक[३] ओ महर[४] पर पाया।
हस्ते-मुतलक[५] सरूरे-मुतलक[६] पर,
झंडा गाडा, फुरेरा लहराया।
इस जगह गैर[७] आ नहीं सकता,
याँ से कोई भी जा नहीं सकता।
कर सके कुछ न तीर की बौछार,
खाली जाए बंदूक की भरसार।

(१) वृक्ष, (२) कुर्बान, (३) आकाश, (४) सूर्य, (५) सत्यस्वरूप, (६) आनन्द स्वरूप, (७) अन्य।

पुर्जे पुर्जे अलग हुए डर के,
धज्जियां जहल[१] की उडीं डर से।
मुझ को काटे कहां है वह तलवार,
दाग दे मुझको है कहां वह नार[२]।
मौत को मौत न आ जायगी,
कस्द[३] मेरा जो करके आयगी।
रूए-आलम[४] पै जम गया सिक्का,
शाहेशाहां हूं शाहे शाहंशाह।

यह दिखावे का हिन्दूपन, मुसलमानपन, ईसाईपन आदि विविध प्यालों की तरह हैं, जिनमें पवित्र विश्वप्रेम का दूध पिलाने का प्रयत्न समय समय पर होता रहा है। सच्चा धर्म वह निर्विकार प्राण है, जो इन सम्पूर्ण धार्मिक शरीरों के जीवन का कारण है।

मजहबे इश्क अज हमा मिल्लत जुदा अस्त।
आशिकाँ रा मजहब-ओ-मिल्लत खुदा अस्त॥

अर्थात् प्रेम का धर्म सब मतमतांतरों से भिन्न है क्योंकि प्रेमियों का धर्म और मत केवल परमात्मा मात्र है।

इन पुराने प्यालों की तरह हजरत अकबर ने भी एक नया जाम (प्याला) घड़ा था, अर्थात् नई रस्मों और नियमों में वही पुराना अमृत डाला था। इस नये प्याले का नाम रक्खा था

दीने-इलाही।

स्वतंत्रता का यह जल-पान-स्थान-था। हिन्दू मुसलमानों को दूध शकर कर देना इसका अभिप्राय था। प्याला खूब स्वच्छ था, मगर प्यालों से हमारी भूख या प्यास नहीं बुझ सकती।

(१) अज्ञान, (२) अग्नि, (३) इरादा, संकल्प, (४) संसार।

प्याले तो आगे भी बहुत धरे हैं। हमको तो दूध चाहिये या सुरा ही सही।

जिगर की आह जिससे बुझे जल्द वह शै ला।

जिगर की आग तो अद्वैत—अभेद के अमृत से बुझती है। अकबरदिली दरकार है, चाहे किसी प्याले में दे दो, पुराना हो कि नया, चितरेला हो कि सादा, सोने का हो या मिट्टी का।

मुफलिस हूँ तो कुछ डर नहीं हूँ मय से न खाली,
बिल्लौर से बेहतर हैं यह मेरा जामे-सिफाली।

माज कुरआँ मग्ज रा बरदाश्तेम्,
उस्तख्वाँ पेशे-सगाँ अंदाख्तेम्।

अर्थात् हम कुरान से मगज (तत्त्व) को ले लेते हैं और शब्दरूपी हड्डियों (फोक) को कुत्तों के आगे डाल देते हैं।

हिम्मते आली तलब जामें सुरस्सा को मबाश,
जाँकि बादारिंद अज जामे बिलोरी खुश अस्त।

प्याले की उपासना से विरोध बढ़ता है। यह सब के सब प्याले तो केवल मूर्तियां है। धन्य है वह सच्चे मस्त पुरुष को जो इन प्रतिमाओं से अर्थात् मूर्त्त स्वरूपों से अमूर्त्त को आया। मिथ्या नामरूप से सत्य स्वरूप को पहुँचा। स्वात्मानन्द के कारण प्याला जिसके हाथ से छूट गया, फूट गया और टूट गया।

कदहे बलबम"" "" ""बूद शिकस्ती रब्बी।

अर्थात् प्याला मेरे ओंठ तक गया और लगते ही, ए परमात्मा! टूट गया।

धन्य है वह कन्या को जिसके पर्दा को, जिसके गहनों कपड़ों को, जिसके नवविवाह के घूंघट को (अद्वैत) प्रेम-

स्वरूप पति स्वयं आकर उतारे। यह हार शृंगार, यह वस्त्र-भूषण भला पहने ही और किस लिये थे?

ईं खर्का कि मेपोशम दर रहने-शराब अला।

अर्थात् उत्तम सुरा को गिरवी रख कर मैं यह वस्त्र पहनता हूं।

यह मुबारक मोतियोंवाला मौला मतवाला जब वैष्णवों के मंदिर में जा निकले, तो कृष्ण की मूर्त्ति इससे मोती माँग ही लेती है, अर्थात् प्रेम के आंसुओं को निकलवाए विना नहीं छोड़ती।

हाथ खाली मर्दुमे दीदा बूतों से क्या मिले।
मोतियों के पंजाए-मुजगाँ में इक माला तो हो॥

नेत्रों से देख सकनेवाले लोग अपने प्यारों से खाली हाथ भला कैसे मिलें? उनके नेत्रों की पलकों के पँजे में प्रेमाश्रु की एक माला तो कम से कम होनी चाहिये। मुसलमानों की मसजिदों में गुज़र हो तो—"सिजदा मस्ताना अमबाशद नमाज़ मुसहफ़ रूश बुवद ईमाने-मन।" (अर्थात् मस्ती भरा झुकना मेरा निमाज़ है और प्यारे के चहरे का दर्शन मेरा ईमान होता।—का हाल होता जाता है। बेशक "कुछ नहीं है सिवाय अल्लाह के"। ईसाइयों के गिरजों में वह खुदी (अहंकार) व जिस्मानियत (देहाध्यास) का सलीब (सूली) पर लटका हुआ दृश्य अपने साथ सलीब पर खींचे विना कब छोड़ता है?

नदारे आखिरन नै दारे दुनिया दर नजर दारम्।
जे अशकत कार चूँ मंसूर रा दारे दिगर दारम्॥

अर्थात् मेरी दृष्टि में न लोक की सूली है और न परलोक की सूली है। तेरे प्रेम के कारण मंसूर के समान मेरी सूली

दूसरी ही है।

सूली उपर सेज पिया की जिस पर मिलना होत।

अकबरदिली की आवश्यकता।

क्या यह अकबरदिली अकबर ही के लिये विशेषता रखती थी और हमारे तुम्हारे से बिलकुल विपरीत है? और क्या यह बादशाहदिली ज़ाहिरी बादशाह होने पर निर्भर है? कदापि नहीं। ईसा के साथ साथ नौसो घोड़े तो नहीं चलते थे, किन्तु उसके विभूतिमय हृदय की बदौलत लाखों नहीं करोड़ों योरप के निवासी ईसा के धर्म की लकीर पर चलने में मोक्ष मानते हैं, क्या तो बंजर, अरब और क्या अरब का एक अनपढ़ अनाथ वनवासी जिसके हृदय में ईसलाम (निश्चय) की अग्नि भड़क उठी, विश्वास की वह्नि प्रज्वलित हो गई "ला इल्लाह इल्लिल्लाह" अर्थात् "नहीं है कुछ भी सिवाब अल्लाह के"। अरब के रेगिस्तान के निर्जीव रज-कण इस अग्नि ने बारूद के दाने बना दिये और यह रेत की बारूद आकाश तक उछलती उछलती थोड़े ही काल में एशिया के इस सिरे से योरप और अफरिका के उस सिरे तक फैल गई। प्राची और प्रतीची को वाड़ा बना दिया। दिल्ली से ग्रेनाडा तक को घेर लिया। हाय! गजब! एक दिल, गरीब दिल, बादशाह का नहीं, विद्वान् का नहीं, एक उग्गी (अनपढ़) अनाथ का, और यह खुदादिली (ईश्वर परायणता)। यह कौन कहेगा कि बादशाहदिली (अकबर दिली) के लिये बाह्यरूप से बादशाह होना भी आवश्यक है? वरन् बाहरी बादशाहत तो बादशाहदिली की बटमार और बाधक है। बुद्ध भगवान् को बादशाहदिली के लि बाहरी बादशाहत का त्याग करना पड़ा। ऊँट पर चढ़ क

ऊँटे ने लेना तो टेढ़ी खीर है। दिखावे की सामग्री और संसारी वस्तुओं के बीच में रहकर पानी में कमल की तरह निर्लेप रहने का पाठ हमें आजकल दरकार है, और यह पाठ प्राचीन काल में महाराजा जनक, अजातशत्रु, भगवान् रामचंद्र और युद्ध क्षेत्र में 'एकत्वमनुपश्यति' का सुमधुर संगीत गानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण जी दे गये थे। वही व्यावहारिक पाठ (आचरण में लानेवाला) आज तीन सौ वर्ष हुए सम्राट् अकबर ने स्पष्टरूप से हमें फिर दिया। सामयिक कर्त्तव्य यही है कि चाहे किसी अवस्था में हो अकबरदिली प्राप्त करो।

प्यारे भारत वासियो! निराश मत होजिये। यह बीज उगे बिना नहीं रह सकते। अनन्त शक्तिरूप प्रकृति इस खेती की किसान है। विश्वास (ईमान) से आरी (तंग) हो तुम्हारे शत्रु, निश्चय से बेनसीब (निर्भाग्य) हो तुम्हारी बला! मेरे प्राण! मिट्टी के ढेलों में अन्न का बीज जो इस प्रकृति से उग पड़ता है, तो क्या तुम मनुष्यों के साथ ही ईश्वर ने मखौल करना था कि हृदय की भूमि में अकबर का बीज न उगेगा?

युद्ध क्षेत्र का जीत लेना तो तुम्हारे अकेले के अपने हाथ की बात नहीं। लेकिन दिल का मारना तो तुम्हारा निज का काम है, और सच तो यों है कि जो हृदय का मालिक हो गया वह संसार का मालिक हो गया।

मारना दिल का समझता हूं जिहादे[१]-अकबर।
वह ही गाजी[२] है बडा जिसने यह काफिर मारा॥

और यह जो कहा करते हैं:-

दिल बदस्त आवर कि हज्जे अकबर अस्त।
अज हजारां काबा यकदिल बेहतर अस्त॥

अर्थात् दिल को अपने वश कर लेना ही महान् यात्रा है। और हजारों काबा की अपेक्षा सब से एक दिल होना सब से उत्तम है।

काबा बनिगाहे-खलीले-आजर अस्त।
दिल गुजरगाहे-जलीले-अकबर अस्त॥

अर्थात् काबा तो हजरत खलील (मित्र) की दृष्टि से अग्निरूप है और दिल प्रकाशस्वरूप आत्मा के घूमने का स्थान है। हाँ, अपने ही दिल की विजय अर्थपूर्ण है, यदि बाह्य साम्राज्य तुम्हें प्राप्त नहीं तो कम से कम एक विलायत में तो शासक हो सकते हो। वह कौन? दिल की विलायत, अन्तःकरण का साम्राज्य।

दिल पर भी न काबू हो तो मर्दानगी क्या है?
घर में भी न हो सुल्लह तो फर्जानगी क्या है?

सच्चा बादशाह तो वही है जो—

गमो-गुस्सा-ओ-यासो-अंदोह-तिर्मान्।
अनादो-फसादो-अमल हाय शैतान्।

को अपनी विलायत में फड़कने न दे।

अगर तनरा न बाशद दिल मुनव्वर जेर खाकश कुन।
नबाशद दर शनिस्तां इज्जते फानूस खाली रा।

अर्थात् यदि देह में चित्त प्रकाशमान (प्रसन्न) नहीं, तो उसे मिट्टी में दबा दे, क्योंकि रात के समय खाली फानूस का मान नहीं होता।

शक्तिस्रोत।

सफलतादायक मेल केवल भलाई में हो सकता है। जो

लोग इन्द्रियों के दास रहकर उन्नति की आशा करते हैं, जो लोग बुराई की भावना से मिलते हैं, अविद्या के स्थिर रखने को मेल करते हैं, वह रेत के रस्से बटते हैं। उन्हें विकास-क्रम (evolution) का भाव, ईश्वरेच्छा का दबाव, अनुत्साह की नदी में जा डुबोता है। बल केवल पवित्रता में है। यह वह ईश्वरीय नियम है कि जिसकी आँखों में कोई लवण नहीं डाल सकता। लॉर्ड टेनिसन की रचनाओं में सर गेलाहेड कहता है:-

दस जवानों की मुझ में है हिम्मत।
क्यों कि दिल में है इफ्फतो-असमत॥

यदि थोड़ा बहुत अनुभव प्राप्त कर चुके हो तो अपने ही दिल से पूछो—ऐसा है कि नहीं? पवित्रता और सचाई, विश्वास और भलाई, इसलाम और अकबरदिली से भरा हुआ मनुष्य विद्योन्नति हाथ में लिये जब कदम बढ़ाता है, तो किसकी मजाल है कि आगे से हिल न जाय। अगर तुम्हारे दिल में विश्वास और सचाई भरी है, तो तुम्हारी दृष्टि लोहे के सितून चीर सकती है, तुम्हारे खयाल की ठोकर से पहाड़ों के पहाड़ चकनाचूर हो सकते हैं। आगे से हट जाओ, दुनिया के बादशाहो! यह शाहे-दिल तशरीफ ला रहा है, सख्त पत्थर की तरह देश में शताब्दियों के जमे हुए पक्षपात उसके पैरों की आहट पाकर उड़ जायँगे, अहल्या की शिला इस राम के चरण छूते ही देवी होकर आकाश को सिधारेगी। अकबरदिली के दण्ड से अविद्यारूपी समुद्र को मारो और वह सीधा रास्ता दे देगा। सब से पहले मुसलमान (मोहम्मद) का वचन है "अगर मेरी दाहिनी ओर सूर्य खड़ा हो जाय और बाईं ओर चन्द्रमा, और दोनों

मुझे धमका कर कहें कि "चल हट पीछे" तो भी मैं कभी नहीं हट सकता।"

चाहे ध्रुव अपने स्थान से टले तो टल जाय, और सूर्य उदय से प्रथम ही अस्त हो जाय, किन्तु साहसी पुरुष का साहस कभी नहीं टूटता, कभी भूल से भी उसके चेहरे पर बल नहीं आता। अंतःकरण की शुद्धि और भीतरी सचाई, अकबरदिली में यह शक्ति है। हृदय का भय इसके विना दूर नहीं होता। भय और भरोसा इसके विना प्राण खा जाते हैं और भीति वह व्याधि है कि पुरुष को कापुरुष बना देती है, सारी शक्ति के होते हुए भी कुछ होने नहीं देती। जैसे अंधेरे में प्रायः पापकर्म के सिवा और कोई कर्म नहीं बन पड़ता (The deeds of darkness are committed in the dark) इसी तरह जब भीतर विश्वास और अकबरदिली का प्रकाश न हो तो मनुष्य से कोई भारी काम प्रकट में बन नहीं पड़ता। जितनी पवित्रता और विश्वास हृदय में अधिक गहरा होगा, उतने ही हमारे काम अधिक प्रकाश में आवेंगे।

नफ्स बने चोफरो शुद बलंद मीगंदद।

अर्थात् श्वास जब बांसरी में नीचे उतरता है तो आवाज ऊंची होती है।

संसार के भय और आशंका—"ग़मो गुस्सा ओ यासो अंदोह हिर्मान्" तब तक तुम्हें जरूर हिलाते रहेंगे जब तक दुनिया के "नकशो निगारो रंगो बू ताज़ा बताज़ा तो बनो" (भिन्न भिन्न नाम रूप) तुम्हें हिला सकते हैं। और जब तुम संसार के प्रलोभनों और भयों से नहीं हिलते तो तुम संसार को अवश्य हिला दोगे। इसमें जो संदेह करता है, काफिर है।

मेल और एकता।

अकबरदिली का हिन्दी या संस्कृत अनुवाद होगा—महात्मा (महान्+आत्मा) अर्थात् बुजुर्ग रूह। वह मनुष्य अकबरदिल या महात्मा कदापि नहीं हो सकता, जिसका हृदय संकीर्ण अर्थात् एक छोटे से परिमित वृत्त में बन्द है, जिसकी सहानुभूति केवल हिन्दू, मुसलमान या ईसाई नाम से संबंधित है और इससे आगे नहीं जा सकती। वह तो असगर दिल (कृपणचित्त) है, अकबरदिल (उदारचित्त) नहीं, लघु-आत्मा है-महात्मा नहीं। अकबरदिल का तो हाल यह है

हर जान मेरी जान है हरएक दिल है दिल मेरा,
हाँ बुलबुलो-गुल मेहरो-मा की आँख में है तिल मेरा।

हिन्दू मुसलमान पारसी सिख जैन ईसाई यहूद,
इन सब के सीनो में धडकता यकसां है दिल मेरा।

जापानी बच्चा स्कूल में जाने लगता है, तो एक न एक दिन नीचे लिखा वार्त्तालाप गुरू शिष्य में अवश्य छिड़ता है।

गुरूः—तुम कितने बड़े हो? इसके उत्तर में बच्चा अपनी आयु बताता है तो फिर गुरू पूछता है:—तुम इतने बड़े क्यों कर हुए?

बच्चा कहता है:—खूराक की बदौलत।

गुरूः—यह खूराक कहां से आई?

बच्चा—हमारे देश जापान की भूमि से उत्पन्न हुई।

बेशक अगर शाक आहार है तो सीधे रास्ते से, और यदि मांस आहार है तो पशुशरीर द्वारा देश की भूमि से तो आता है।

गुरूः—अच्छा, तुम्हारा शरीर अन्त में अर्थात् वास्तव में जापान की मिट्टी से फलता फैलता है और जापान ही ने बनाया है। यदि माता पिता से पैदा हुआ हो तो फिर माँ

बाप की शक्ति भी तो आहार ही से आती है।

बच्चाः—हाँ।

गुरूः—तो फिर जापान को अधिकार है कि जब उचित समझे तुम्हारा यह शरीर ले ले।

बच्चाः—जी हां, मेरा कोई बहाना उचित न होगा।

चलो इतनी वातचीत से देश पर प्राण समर्पण का खयाल छोटे बालक के प्रत्येक नस-नाड़ी में प्रविष्ठ हो गया।

प्रशंसा के पात्र हैं वे छोटे २ बच्चे जिनकी समझ में यह मोटी सी बात समा जाती है, और आचरण में आ जाती है। हमारे देश में इधर तो विद्वान् पंडित और उधर आलिम फाजिल मौलवी शताब्दियों में अभी व्यावहारिक रूप में इतना न समझें कि क्योंकि हम हिन्दू-मुसलमान एक ही माँ (हिन्दुस्तान) से पैदा हुए हैं और उसका दूध पीते हैं, क्यों कि हिन्दू और मुसलमाग दोनों के रगों और नसों में खून एक ही भूमि की वनस्पति, जल, वायु आदि से पैदा होता है, अतएव हम सगे भाई हैं। योरप के किसी देश का मनुष्य जब अमेरिका में जा बसता है तो तीन वर्ष के निवास में उसकी संपूर्ण सहानुभूति और प्रीति अमेरिका के पड़ोसियों से हो जाती है चाहे वह उसके सहधर्मी हों या न हों। यह नहीं कि शरीर तो अमेरिका में और मन उस पुराने देश में।

योरप के अधिकांश लोग ईसाई धर्म के हैं और कितने ही उन में ईसा के नाम पर प्राण न्योछावर कर देना परम आनंद समझते हैं, लेकिन उनमें से कोई भी ईसा की जाति को ईसा के देश को अपनी जाति या वर्त्तमान देश से अधिक प्रिय नहीं रखता। लेखक सप्रेम कहता है और प्रेम वह वस्तु है कि इसकी कठोरता भी सह्य होती है, प्यारे मुसलमान

भाइयो! यह विभेद (फुट) क्यों कि कवि के कथनानुसार "सिर है कहीं, दिल कहीं, जाँ कहीं है?"

हिन्दुस्तान में रहते हैं तो दिल हिन्दू लोगों से क्यों अलग रक्खे जायँ? उधर हिन्दू पंडितों से हमारा यह कहना है कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचंद्र के शवरी के झूठे बेर, गरीब निषाद (मल्लाह) से प्रेम, बन्दरों तक से मोहित कर देने वाली प्रीति, शत्रु के भाई पर वह अनुकंपा, जरा स्मरण तो करो और यह भी तो स्मरण करो कि निम्न लिखित 'पण्डित' की प्रशंसा कौन कर गया है? दोनों ओर से लड़ने मरने को सेनाएँ डट रही हैं, सारे हिन्दुस्तान के वीरों के हृदय मारे क्रोध और द्वेष के मानो आकाश तक उछल रहे हैं, इस अवसर पर जिह्वा और शब्दों से जगद् गुरु (अखिल जगत के प्रकाश दाता) कैसे स्पष्ट और सुरीले गीत में तुम्हारे लिये संदेशा (या अनुशासन) छोड़ गया है। सहस्रों वर्ष हो गये, आकाश ने अपने डाकघर में इस चिट्ठी पर गुरु का नाम न पढ़ने दिया, दूत पवन, उसे अपने अपने परों से बाँधकर उत्तर, दक्खिन, पूरब, पच्छिम, पुरानी दुनिया, नई दुनिया, जापान, योरप, अमेरिका सब कहीं पहुँचा आया। धन्य है इस कबूतर की प्रभु भक्ति को। अन्य देशों के लोग इस चिट्ठी पर आचरण करके दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति कर रहे हैं, पर हाय! तुमने जिनके लिये यह श्रुति पहले पहल अवतीर्ण हुई थी, उसे व्यावहारिक बर्त्ताव के समय बहानों में ही टाल दिया।

> विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
> शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥
>
> इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
> निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थितः॥ गीता अ. ५।

> अर्थात्:-माहिरे इल्मो फन बिरहमन में
> गाय में फील में कि दुश्मन में।
>
> सग में संगकुश में यकनिगाही हो,
> दिल में उल्फत और सफाई हो।
>
> जिस में इस एकता की रंगत है,
> वह ही पंडित है, वह ही पंडित है।

अनुवादः—विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण, और गाय, हाथी, कुत्ता, और चण्डाल सब को पंडित बराबर देखते हैं॥१८॥

जिन का मन बराबरी (साम्य) में स्थित है, उन्हों ने यहीं दुनियां को जीत लिया। ब्रह्म दोषरहित और सब में बराबर (सम) है, इस लिये वह ब्रह्म में हि स्थित है॥ १९॥

"ढाई अक्षर 'प्रेम'' के पढ़े सो पंडित हो।"

पंडित तो वह है जिसके प्रेम के चक्षु खुले हुए हैं, जो ज्ञान और प्रेम के आवेश में पशु वनस्पति, वरन् पाषाण तक में भी अपना ठाकुर भगवान् देखता है और पूजता है। वह पंडित भला कैसे कहा जा सकता है जिसको मनुष्य की छाया से घृणा हो, मुसलमान को छूना पाप जाने और व्यवहार में पत्थर ही में भगवान् माने।

अकबर के पास इसके कोके की कई बार शिकायत आई। बार बार की बगावत और कई बार की साजिश की खबरें अकबर ने इस कान से सुनकर उस कान से निकाल दीं। जब कोष के शुभचिन्तकों ने सख्त गिल्ला किया कि जहाँ-पनाह! इतनी नरमी और रिआयत क्यों उचित समझी जाती है? तो उत्तर दिया कि-"तुम लोग नहीं समझते कि मेरे और उस कोका भाई के बीच दूध की एक नदी बह रही है, जिसको चीरना मेरे लिये असंभव है। मैं भला क्यों कर उसका

वर्णन कर सकता हूँ?" धन्य है!

अकबर और उसके कोका ने एक ही राजपुत-माँ का दूध पिया था। क्या हिन्दू और मुसलमान एक ही माँ (हिन्दुस्तान) का दूध नहीं पी रहे? पिछली शिकायतें भूल जाओ, गिल्ले गुस्से सब माफ़ करो। रूठे मनाए गये!

> गर जे दस्ते-जुल्फे-मुशकीनत खताए रफ्त रफ्त,
> वर जे हिंदूए-शुमा बरमा जफाए रफ्त रफ्त।
>
> गर दिले अज गमजए-दिलदार बारे बुर्द बुर्द,
> दरमियाने जानो जानाँ माजराए रफ्त रफ्त।

अर्थात् अगर तेरे सुगन्धित बालों के हाथ से कोई अपराध हो गया है तो उसे हो जाने दे, और यदि तुम्हारे प्यारे से हम पर अत्याचार हो गया तो उसे हो जाने दो। अगर प्यारे के सैन से कोई दिल एक बार छीना गया तो छिन जाने दो। और प्रीतम प्यारे के बीच में यदि कोई झगड़ा हो गया है तो हो जाने दो।

> तारे कब रोशनी से न्यारे हैं?
> तुम हमारे हो, हम तुम्हारे हैं।

* * * *

> ए अदू! ऐंठ ले बिगड, तन ले,
> सख्त कहदे कि सुस्त ही कहदे।
>
> जोश गुस्सा निकाल ले दिल से,
> ताकते तैश आजमा तू ले।

* * * *

> मुझे भी इन तेरी बातों से रोक थाम नहीं,
> जिगर में धाम न कर लूं तो "राम" नाम नहीं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!